Himalayan J. Soc. Sci. & Humanities ISSN: 0975-9891
Vol. 12, (2017) 147-151

संस्कार शब्द का महत्व एवं षोडश संस्कारों का वैज्ञानिक परिशीलन।

विनय कुमार शर्मा[1*]
[1]राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय क्याटू हि0प्र0

*Corresponding Author Email: jaigod54@gmail.com

Received: 02.08.2017; Revised: 15.09.2017; Accepted: 19.12.2017
©Society for Himalayan Action Research and Development

सारांश– सम्. कृञ् धातु से घञ् धातु व प्रत्यय करने पर संस्कार शब्द निष्पत्र होता है। इसके अनेक व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ हैं। विभिन्न शास्त्रों में संस्कार शब्द के भिन्न–भिन्न अर्थ किए गए हैं।
[1] शास्त्रीय मान्यता के अनुसार गर्भाधानादि संस्कार (गर्भादान पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, चूड़ाकरण, मौञजीबन्धन संस्कार) जीव के गर्भबीज सम्बन्धी दोषों को दूर कर देते हैं। जिससे जीवन अत्यन्त तेजस्वी बनता है।[2] तथा परम पुण्य[3] को प्राप्त करता है जो पुरूषार्थ चतुष्ट्य[4] साधन में सहायक होता है। संस्कारों को दो भागों में बॉट सकते हैं। एक शारीरिक जो गर्भाधानादि शास्त्रीय कियाओं से सम्पन्न है। संस्कियन्ते गार्भिकबीजदोषादि यैस्ते संस्कराः। दूसरा, व्यवहार–जनित, जैसे–जिस कर्म को या शब्द व वाक्य को अत्यन्त आभास में लाते हैं। तो वह भी एक संस्कार के रूप में हृदय में बैठ जाता है। इस पक्ष में वह सुसंस्कार या कुसंस्कार भी हो सकता है, क्योंकि निरतिशयेन कर्मणामभ्यासः संस्करः कहा जाता है। अर्थात जिस चीज का हम बरम्बार अभ्यास कर लेते हैं वह भी संस्कार के रूप में बैठ जाता है।
वस्तुतः संस्कार का अभिप्राय धार्मिक कियाओं से दैहिक एवं बौद्धिक परिष्कार के लिए किए जाने वाले अनुष्ठानों से है। इनमें सदाचारों के नियम भी समाविष्ट हैं। हिन्दुओं के सभी संस्कार मनुष्य को निश्चित दिशा में परिष्कृत करने वाली धार्मिक कियाएँ हैं। ये वे कियायों की सामाजिक आवश्यकता के साथ–साथ धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व भी है।। यद्यपि संस्कारों की अपूर्व श्रृंखला दखने को मिलती है। हिन्दू जीवन एक ऐसा जीवन है जिसका कोई क्षण निरुद्देश्य नहीं तथा कोई ऐसा कोई क्षण नहीं जो पवित्र न बना दिया गया हो। प्राचीन हिन्दू जीवन की जो रूपरेखा धर्म सूत्रों और गृह्यसूत्रों में मिलती है वह एक ऐसा भव्य प्रासाद है जिसकी प्रत्येक ईट बड़े सुन्दर और सही ढंग से रखी गई है। अगिरा ऋषि के शब्दों में सभी संस्कार चित्र रचना के रंगों के सामान मानव रूपी चित्र को पूर्ण स्वरूप देने के साधन हैं।[5]

कुंजी शब्द– सस्कांर , धर्म , चित्र , गर्भाधानादि ।

संस्कार–महत्व

चित्रकर्म यथाऽनेकैरडैरून्मील्यते शनैः।

ब्राह्मण्यमपि तद्वत्स्यात् संस्कारैर्विधिपूर्वकैः।।[6]

जिस प्रकार चित्र निर्माण कार्य को पूर्ण आकर्षणयुक्त बनाने के लिए विवध रंगों द्वारा उसके अवयवों को रञिजत किया जाता है, ठीक उसी प्रकार चरित्र–निर्माणार्थ व व्यक्तित्व निर्माणार्थ विधिवत् संस्कारों को अनुष्ठान करना आवश्यक हो जाता है। संस्कारों के बिना जीवन में उत्कर्षता नहीं आ सकती है। अपने ही प्रेरित होता है सब नहीं। अतः संस्कारों का महत्व जीवन में सर्वोपरि है।

जिस प्रकार एक मूर्ति को मनोहर रूप प्रदान करने के लिए अनेक प्रकार के कियाकलापों से कमबद्धता से सम्पन्न करना होता है उसी प्रकार उन्नत व्यक्तित्व सम्पादन के लिए समय–समय पर संस्कारों को सम्पन्न किया जाता है।

त्रिकालदर्शी ऋषियों ने मानव को शक्तिशाली, विचारशील एवं चरित्रवान् आदि शुभगुणों से सम्पन्न करने के लिए समय–समय पर विविध संस्कारों को अनुष्ठान करने के लिए वेदादि शास्त्रों के माध्यम से उपदेश दिया है, उन संस्कारों से जीवन पर पड़ने वाली प्रभावों पर आगे यथास्थान विचार किया जा रहा है।

वैज्ञानिक परिशीलन

संस्कारों का वैज्ञानिक विवेचन करना शोधकार्य का प्रमुख लक्ष्य है। इसलिए ज्ञान और विज्ञान में भेद है, इस विषय पर प्रकाश डालना बहुत आवश्यक है। अवबोधनार्थक ज्ञा धातु से करण में ल्युट् प्रत्यय करने से ज्ञान शब्द निष्पन्न होता हैं (ज्ञा + ल्युट=ज्ञानम्)। कोष वक्यानुसार – मोक्ष प्राप्ति के लिए मनुष्य जो बौद्धिक व्यापार या क्रियाकलाप करता है वही ज्ञान कहलाता है। अर्थात जिस मनुष्य का ज्ञान प्राप्त हो जाता है वह मोक्ष का प्राप्त कर लेता है। ज्ञान प्राप्ति ही मोक्ष का मार्ग है। इसी तात्पर्य को अमरकोष में व्याख्यायित करते हुए कहा गया है कि–है। इसी तात्पर्य को अमरकोष में व्याख्यायित करते हुए कहा गया है कि– मोक्षे धीः ज्ञानमन्यत्र विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोः[7]

सोलह संस्कारों का संक्षिप्त परिचय

गर्भाधान

द्रव्यों के गुण–धर्मों का प्रतिपादन आयुर्वेदशास्त्र का धर्म है। परन्तु उनके ग्राह्य और अग्राह्यत्व का निर्णय धर्मशास्त्र करता है। भौतिक संसाधनों का अविष्कार करने के लिए जिस प्रकार वैज्ञानिक पद्धति के अन्तर्गत भिन्न–भिन्न पदार्थों के सम्मिश्रण से नये प्रकार के द्रव्यों का निर्माण होता है अथवा विचार होता है उसी प्रकार आयुर्वेद में औषधि निर्माण को देखना चाहिए। पञ्चभौतिक शरीर का पञ्चभौतिक पदार्थों से ही चिकित्सा होती है। आधि (मानसिक विकार) की चिकित्सा शम–दम आदि इद्रिय निग्रहात्मक उपचार से ही की जाती है किन्तु व्याधि (शरीर सम्बन्धी पीडा) की चिकित्सा औषधि उपचार से ही की जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान भी यह स्वीकार करत है कि शिशु जब गर्भ में होता है तब माता पिता के व्यवहार, चिन्तन एवं क्रियाकलाप तथा खान–पान का प्रभाव गर्भस्थ शिशु का प्रभावित करता है। इसका विस्तृत विवेचन ब्राह्मण एवं उपनिषद् ग्रन्थों में भी पाया जाता है। आयुर्वेद में इसका प्रमाण मिलता है।

मातापित्रोस्तु नास्तिक्यादशुभैश्च पुराकृतः

वातादीनां पकोपेण गर्भो वैकृतमाप्नुयात्।।

8

गर्भाधान की शास्त्रीय विधि को यहॉ संग्रह करके प्रस्तुत किया गया है–

पुंसवन

गर्भधारण से दूसरे या तीसरे महीने में यह संस्कार होता है। पुरूष प्रधान इस सृष्टि में प्रथम गर्भ संस्कार भी पुरूष निमितक होता है। इसलिए इसका ना (पुमान् सूयते संस्कारेणानेनेति) पुंसवन संस्कार रखा गया है। समन्त्रक औषधि प्रयोग से गर्भ अवश्य ही प्रभावित होता है अतः यह वैज्ञानिक है।

सीमत्रतोत्रयन

शरीर का मुख्यागं सिर है। व्यक्ति की पहचान उसके शिरोभाग चेहरे से होती है। सभी श्रानेन्द्रियों का सम्बन्ध भी इसके साथ होता है। पुत्रत्वेन कल्पित गर्भ के पूर्व संस्कार के पश्चात् शिशु के स्वास्थ्य मेधावृद्धि तथा आरोग्य के लिए इस संस्कार को किया जाता है। जिस प्रकार विग्रह को स्वरूप प्रदान के पश्चात् जब तक उसमें क्रिया शक्ति का संचार न हो तब तक उसका व्यावहार वास्तविक प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है, उसी प्रकार पहले गर्भधारण, उसके बाद उसे स्थिरीकरण, स्थित का पुरूष के रूप में परिकल्पन, फिर गर्भधारण, उसके बाद उसे स्थिरीकरण, स्थित का पुरूष के रूप में परिकल्पन, फिर उसमें धी शक्ति का सम्बर्द्धन आदि जन्म से पहले गर्भ की सम्पुष्टि के लिए क्रियमाण सारे संस्कार उसकी अभिवृद्धि में सहायक होते है। इन सभी के न करने पर भी गर्भ वृद्धि होती है तथापि उसमें गुणधान नहीं होता

है और प्रतिभा आदि शक्तियों की कमी उस में रहती है। इसलिए गुणधान के लिए संस्कारों को समय पर सम्पन्न करना चाहिए।

जातकर्म

शास्त्रों में सीमन्तोन्नयन के बाद प्रतिमास गर्भ रक्षा के लिए मणि मन्त्रौषधि आदि उपचार बताए गए हैं। प्रसव काल में शास्त्र निद्धिष्ट उपायों के प्रयोग को कुलवद्ध स्त्रियॉ प्राप्त करती आई हैं। आज जीवन जीने की शैली बदल जाने से हमें कितने धक्के खाने पड़ रहे हैं इससे कोई अविज्ञ नहीं हैं। जातकर्म, नाभिच्छेदन, आयुष्करण ये सभी प्रयोग जातकर्म प्रयोग के अन्तर्गत ही आते है। नवजात शिशु को सोने से शहद और घी चटाने का विधान है। चरक एवं सुश्रुत ग्रन्थ में भी इससे लाभ का वर्णन है। इस अवलेह से जाड्यदोष निवृति तथा शरीर में रोग निरोधक शक्ति का भी उदय होता है। आयुष करण मन्त्र प्रयोग से देवताओं से आशीर्वाद की प्रार्थना की जाती है। माता का स्तन पान भी स्मन्त्रक विधान है।

नामकरण

इस संसार में लोकव्यवहार के लिए जीव का किसी नाम से जुडना पड़ता है। ज्योतिशास्त्र के अनुसार उत्पन्न के समय ग्रह स्थिति को देखते हुए अकारादि वर्णक्रम से नाम निर्धारण किया जाता है। इस सन्दर्भ में धर्मशास्त्रोक्त नियम भी परिपालनीय होता है। नामकरण संस्कार जननाशौच निवृति के पश्चात् दशम या एकादश दिन का विधान है। यह संस्कार कहीं कहीं कुलपरम्परा के अनुसार भी करते हैं।

निष्क्रमण एवं अन्नप्राशन

चौथे महीने में शिशु को घर से बाहर निकालना एवं छठे महीने में अन्नप्राशन का विधान है। गृह्यसूत्रों में कामना भेद से विविध प्रकार के अन्न खिलाने का विधान वर्णित हैं। छठे महिने के शिशु को (द्रव्य–गुण भेद से) अभीष्ट अन्न खिलाने से उसी प्रकार की प्रतिभा का उदय होता है। इसमें द्रव्यनिष्ठ कोई चमत्कार अवश्य है जो ठीक समय पर करने से ही गुणदायक होता है अन्यथा नहीं। इसलिए संस्कारों का नियत काल में अनुष्ठान करने के लिए शास्त्रकार बल देते हैं।

चूड़ाकरण

गर्भस्थ केशों को काटना ही चूड़ाकरण का मुख्य प्रयोजन है। यह संस्कार तीन साल पूरे होने और चौथा आरम्भ होने से पूर्व निर्धारित किया गया है। इस संस्कार में गर्भस्थ केशों को दूर करना ही मुख्य लक्ष्य है। उसके साथ कई प्रकार के दोषों का भी निवारण होता है।

उपनयन

उपनयन वेदारम्भ एवं समावर्तन ये तीनों संस्कार विद्योपार्जन परक है विद्योपार्जन के सन्दर्भ में पौर्वदैहिक संस्कार भी संकमित होता है। कालिदास के शब्दों में–

फलानुमेयाप्रारम्भाः संस्कारा प्राक्तना इव[9]

जैसे कार्य को देखकर कारण का अनुमान किया जाता है। उसी प्रकार फल का देखकर प्राक्तन प्रयासों को भी अनुमान किया जा सकता है। वेद में भी –

अक्ष्णवन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः

अदध्नास उपकक्षास उ त्वे ह्रदा इव स्नात्वा उ त्वे ददृशे।।[10]

विशिष्ट गुणसम्पन्न व्यक्ति ही गृहस्थाश्रम तथा समाज के लिए सुयोग्य पात्र के रूप में सिद्ध होता है। गुरूकुल में वेदाध्ययन के समय ब्रह्मचर्यावस्था में काफी कठोर नियमों का पालन करना पडता है, जिससे उसके अन्दर अधिक सहिष्णुता आ जाती है। सहिष्णु एवं विवेकी का अभ्यास छात्र को गुरूकुल में ही विद्याध्ययन के समय पर्याप्त रूप से प्राप्त होता है और वह समाज के लिए एक आदर्श नागरिक के रूप में अपने को स्थापित करता है। नियम–संयम रहित विद्याध्ययन में ये गुण दुर्लभ हैं। इसलिए आज युवाओं में थोड़ी–थोड़ी बात पर आक्रोश पैदा होता है। बड़े–छोटे का

आदर कैसे होना चाहिए यह भी नहीं जानते हैं। अपसंस्कृति के संस्कारों में पल कर जब बड़े होते है तो पशु जैसा या कसाई जैसा काम करने में थोड़ा भी संकोच उनके अन्दर नहीं होता है। मरना या मारना ही वे जीवन की समस्या का हल समझते हैं। जबकि हमारी भारतीय संस्कृति में छात्रावस्था में ही भावी जीवन को व्यवस्थित रखने के लिए सभी प्रकार नियम–धर्म सिखाए जाते हैं। जिससे छात्र बड़े होकर जीवन में आयी कठिन से कठिन परिस्थितियों में पथभ्रष्ट न हो कर धैर्य एवं साहस से कार्य करते हैं। अतः आधुनिक सन्दर्भ में उपनयन का अर्थ हम विद्याग्रहण के काल खण्ड में कर सकते हैं।

समावर्तन

समावर्तन संस्कार विद्याग्रहण समाप्त होते ही किया जाता है। आचार्यों के बताये मार्ग पर चलकर जीवन का समुन्नत बनाना ही इस संस्कार का दृष्टिफल है। इसका एक औपचारिक प्रयोग आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में भी दिखाई पड़ता है जिसको हम (कन्वोकेशन्) दीक्षान्त समारोह कहते है। उपनयन के बाद जिन कठोर नियमों से आबद्ध होकर छात्र ने विद्याध्ययन किया, गुरू सान्निध्य से जो ज्ञान पाया, उसका उपयोग किस प्रकार समाज में उसे करना है और समाज में गृहस्थाश्रम में रहते हुए उसे कैसे जीवन–यापन करना है, तत्सम्बन्धी नियमों को भी गुरूकुल में गया बालक अध्ययन समाप्ति के पश्चात् पुनः घर वापस होने की विधि का समावर्तन कहते हैं। सम्+आवर्तन समावर्तन।

विवाह

इस सृष्टि में मानव जाति को सन्तानोत्पति के माध्यम से अनवरत बनाए रखने के लिए वैवाहिक संस्कार बहुत महत्वपूर्ण है। इस संस्कार से अनवरत बनाए रखने के लिए वैवाहकि संस्कार बहुत महत्वपूर्ण है। इस संस्कार में पुरूष एवं स्त्री की भूमिका प्रधान है । समावर्तन क बाद स्नातक गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है। वेद विहित (1 ब्रह्मचर्य 2 गृहस्थ 3 वानप्रस्थ 4 संन्यास) चार आश्रमों से गृहस्थश्रम ही सबसे महत्वपूर्ण है। स्मृतियों मे ऐसा कहा जाता है कि जिस प्रकार वायु का आश्रय लेकर समस्त प्राणी जगत् जीवित है[11] उसी प्रकार गृहस्थाश्रम का आश्रय लेकर सभी आश्रम जीवित हैं इसलिए गृहस्थाश्रम सभी आश्रमों से श्रेष्ठ है। इसमें भी स्त्री की महिमा ज्यादा है।

क्योंकि गृहिणी गृहभित्याहुः न गृहं गृहिणीं विना

कहा गया है तात्पर्य यह है कि गृहिणी से ही घर कहलाता है। अन्यथा धर्मशाला या कोई मठ हो जायेगा। घर के सभी कार्यों को संभालने से गृहणी (घरवाली) कहलाती है। गृहस्थाश्रम का मूल आधार पत्नी होने से प्रायः कौटुम्बिक सम्बन्धों का विस्तार उसी से होता है, जैसे बैलगाडी दो पहियों से ही ठीक चलती है, ठीक उसी प्रकार गृहस्थश्रम का धर्म निर्वाह पति–पत्नी दोनों से ही चलता है।[12]

अतः यह संस्कार मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण संस्कार है। इसी से प्रजा सृष्टि का सकंल्प प्रारम्भ होता है। दोनों अलग–अलग परिवार के प्राणी वैवाहिक संस्कार से एकात्मकता को प्राप्त कर जीवन भर एक दूसरे के सुख दुःख के साथी बन जाते हैं।

अन्त्येष्टि

कुछ आचार्य इसको संस्कार के रूप में ग्रहण करते हैं कुछ नहीं। क्योंकि संस्कार का दो तरह से वर्गीकरण किया है। (एक) जन्म से पूर्व के साथ दूसरा जन्म के बाद के। दोनों ही दैहिक हैं अर्थात् शरीर से सम्बन्ध रखने वाले हैं। मृत्यु के बाद जब पार्थिव शरीर से कोई मतलब नहीं रह जाता तो लोग उसे जला देते हैं। जला देने के पश्चात् द्वादशाह तक के सभी अनुष्ठेय क्रियाकलापों को अन्त्येष्टि कर्म कहते हैं। या और्ध्वदैहिक कर्म कहते हैं। शरीर से प्राण छूटने के पश्चात् उस शरीर से कोई कार्य सम्भव नहीं होता है। अतः जिन आचार्य के मत में अन्त्येष्टि का किसी भी संस्कार के रूप में गणना नहीं की गयी है, सम्भवतः यही कारण हो सकता है। इस के साथ एक दूसरी भी बात है कि संस्कार शरीर के अन्दर गुणदायक होते हैं, अतः अन्त्येष्टि को संस्कार के रूप में ग्रहण नहीं किया जाता हैं। मेरे विचार से दाह के पश्चात् और्ध्वदैहिक कर्मजन्य पुण्य से जीव की सद्गति होती है, ऐसे शास्त्रों में ज्ञात होने से अन्त्येष्टि को संस्कार रूप में मान लेने से कोई हानि नहीं है।

सन्दर्भ सूची

[1] शिक्षा संस्कृति, प्रशिक्षण, सौजन्य, पूर्णता, व्याकरणसम्बन्धी शुद्धि, संस्करण, परिस्मरण, शोभा, आभूषण, प्रभाव, स्वभाव, किया, स्मरणशक्ति पर पड़ने वाला प्रभाव, शुडि किया, धार्मिक विधि, विधान, अभिषेक, विचार, भावना, धारणा, कार्य का परिणाम, किया की विशेषता।– हिन्दू संस्कार पृ0 18

[2] गभौंर्हामैर्जातकर्मचौलमौञजीबन्धनैः। कार्य शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ।। मनुत्र. 2.26

[3] स्वाध्यायेनजपैहोंमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः। म्हायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं कियते तनुः।। मनुः 2.227

[4] संस्कारैः संस्कृतः पूर्वरूत्त्रैरनु संस्कृतः।
नित्यमष्टगुणैर्युक्तो ब्राह्मणो बगाह्मलौकिकः। मनुः 2.29
ब्राह्मपदमवाप्नोति सस्मात्र च्यवते पुनः।। शड्खलिखित स्मृतिः

[5] चित्रकर्म यथ नैकै रडैरून्मील्यते शनैः ब्राह्मण्यमपि तद्वत् स्यात् संस्कारैर्विधिपूर्वकम्।। अडि.रास्मृतिः

[6] वीरमित्रोदय, सं.प्र.पृ. 136

[7] अमरकोष 1/5/6

[8] सु.सं.श. स्था. 2/3/52

[9] रघु 1/20

[10] ऋ. 8/2/34/2

[11] यथा वसयुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः। गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः।। मनु.2

[12] यथ ह्येकेन चकेण रथस्य न गतिर्भवेत्। एवं पुरूषकारेण विना दैवं न सिद्धयति।। या. स्मृ.आ.अ. 351

****